न्यायालय का नेतृत्व करते हुए
Leading the Court

निकोलस रॉबिन्सन
Nicholas Robinson
July 19, 2010

भारत के उच्चतम न्यायालय द्वारा अपने दरवाज़े पहली बार खोलने के लगभग साठ साल बाद अब इस न्यायालय को शक्तिशाली होने के साथ-साथ व्यापक भी माना जाने लगा है. इसकी अनेक पीठें साल भर लगभग हर रोज़ ही दर्जनों निर्णय करती हैं, जिनमें से कुछ निर्णय नाटकीय होते हैं और कुछ साधारण. अपने निरंतर बढ़ते आकार, मामलों और दायित्वों को पूरा करने के लिए न्यायालय के प्रमुख प्रशासक मुख्य न्यायाधीश की शक्तियों में भी उल्लेखनीय वृद्धि हुई है. निश्चय ही आज उच्चतम न्यायालय पर मुख्य न्यायाधीश का ही प्रभुत्व है. यद्यपि न्यायपालिका और भारत की निर्वाचित पीठों के बीच शक्तियों के संतुलन को लेकर अक्सर बहस होती रहती है, लेकिन इस बात की अक्सर अनदेखी कर दी जाती है कि आज न्यायपालिका के अंदर भी शक्तियों का हस्तांतरण होने लगा है. इस हस्तांतरण के दूरगामी परिणाम भी हो सकते हैं और यह तर्क दिया जा सकता है कि इसका उदय संविधान की मूल दृष्टि से कहीं बाहर जाकर हुआ है.

मुख्य न्यायाधीश के पास यह क्षमता होती है कि वह किसी भी न्यायाधीश को किसी भी पीठ के लिए चुन सकता है और इस प्रकार पीठ के चयन के समय इस क्षमता का उपयोग करते हुए वह मामलों के निर्णय को प्रभावित करने में सक्षम होता है. अब यह बहुत आसान भी हो गया है क्योंकि आरंभ में इस न्यायालय में आठ न्यायाधीशों की मूल पीठ हुआ करती थी और आज इस पीठ के न्यायाधीशों की संख्या बढ़कर इकतीस हो गई है. वर्ष 2002 में मुख्य न्यायाधीश एस.पी. भरुचा के आई.टी.सी. लिमिटेड बनाम कृषि उपज बाज़ार के मामले के बाद से अब तक वास्तव में संवैधानिक पीठ के मामले में भारत के किसी भी मुख्य न्यायाधीश की कभी असहमति नहीं रही.

गैर-असहमति वाले मुख्य न्यायाधीशों का मामला कोई नया विचार नहीं है. कैंटकी विश्वविद्यालय में प्रो. जॉर्ज गैडबॉइस ने पाया कि भयंकर सरकार विरोधी पक्षपात के कारण मुख्य न्यायाधीश सुब्बाराव (जो 1966-1967 में मुख्य न्यायाधीश के पद पर थे) ने उच्चतम न्यायालय में न्यायाधीश के रूप में अड़तालीस बार अपनी असहमति प्रकट की. इससे अधिक असहमति किसी और न्यायाधीश ने प्रकट नहीं की, लेकिन मुख्य न्यायाधीश बनने के बाद उन्होंने एक बार भी असहमति प्रकट नहीं की. शायद उनके कार्यकाल में समस्त उच्चतम न्यायालय ने सरकार-विरोधी निर्णय सबसे अधिक संख्या में पारित किए. इससे यह लगता है कि उन्होंने पीठ के लिए न्यायाधीशों का चयन करते हुए अपनी शक्ति का भरपूर उपयोग किया और इसप्रकार उन मामलों को भी प्रभावित किया,जिनकी उन्होंने कभी सुनवाई भी नहीं की.

पीठ निर्धारित करने की शक्ति उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीशों को भी दी गई है. उच्चतम न्यायालय की तरह उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीशों के पास भी अपने न्यायालयों की कार्यसूची

को नियंत्रित करने का जबर्दस्त अधिकार रहता है. उदाहरण के लिए अधिकांश उच्च न्यायालयों में मुख्य न्यायाधीश की पीठ ही सबसे पहले सार्वजनिक हित के मामलों की सुनवाई करती है. इसके परिणामस्वरूप सार्वजनिक हित के मामलों के प्रति उच्च न्यायालयोंकी सहानुभूति या असहानुभूति की जो छवि बनती है वह मुख्यतः अकेले मुख्य न्यायाधीश की ही छवि रहती है.

मुख्य न्यायाधीशों को नियुक्त करने में और मोटे तौर पर न्यायपालिका में मुख्य न्यायाधीशों की भूमिका का भी विस्तार हो गया है. संविधान में व्यवस्था है कि राष्ट्रपति मुख्य न्यायाधीश के परामर्श से उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति करेंगे. परंतु 1990 के दशक में उच्चतम न्यायालय के दो निर्णयों ने इस व्यवस्था के निर्वचन में कायाकल्प कर दिया. अब उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति मुख्य न्यायाधीश और न्यायालय के चार वरिष्ठतम न्यायाधीशों (इनमें आम तौर पर भावी मुख्य न्यायाधीश शामिल होते हैं) जैसे सहकर्मियों के दल द्वारा की जाती है. इसके कारण अगली पीढ़ी के न्यायाधीशों को चुनने में मुख्य न्यायाधीश की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है, भले ही इन विकल्पों के पीछे का तर्क अधिकांशतः स्पष्ट नहीं होता. उच्च न्यायालयों में भी नियुक्ति की यही प्रक्रिया रहती है. इससे उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीशों की भूमिका भी प्रभावशाली रहती है.

इसके अलावा भी मुख्य न्यायाधीश के पास अन्य अनेक शक्तियाँ होती हैं. इनमें से कुछ शक्तियों की कल्पना संविधान में की गई है और कुछ की नहीं. इन्हीं शक्तियों के कारण ही उच्चतम न्यायालय में मुख्य न्यायाधीश की स्पष्ट रूप में केंद्रीय भूमिका रहती है. वह किसी भी मामले को छोटी या बड़ी पीठ में निर्देशित कर सकते हैं या कर सकती हैं; वह यह भी तय करते हैं या करती हैं कि बड़े प्रोफ़ाइल वाले के मामलों की सुनवाई कब की जाए; सहकर्मियों के दल के एक भाग के रूप में वह यह भी तय करते हैं या करती हैं कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों का तबादला कहाँ किया जाए; भ्रष्टाचार के कथित मामलों को कब खोला जाए; न्यायालय को भेजी गई पत्र याचिकाओं की छँटाई करते हैं या करती हैं और न्यायालय के प्रवक्ता और सबसे मुखर चेहरा भी वही होते हैं या होती हैं.

बड़ा और प्रमुख न्यायालय होने के नाते मुख्य न्यायाधीश की शक्तियाँ और बढ़ेंगी. इसके लिए न किसी को चिंता करनी चाहिए और न ही इसमें चिंता की कोई बात है. इस बात के कारण ज़रूर हैं कि उनके नेतृत्व की भूमिका को और मज़बूत किया जाना चाहिए. उदाहरण के लिए इस समय मुख्य न्यायाधीश का न्यूनतम कार्यकाल कुछ सप्ताहों का भी हो सकता है. मुख्य न्यायाधीश का कार्यकाल कम से कम दो साल का होना चाहिए ताकि वह अव्यवस्थित न्यायपालिका को कुछ समय तक नेतृत्व प्रदान कर सके.

यदि उच्चतम न्यायालय की शक्ति आंशिक रूप में समान अधिकार रखने वाले अनेक न्यायाधीशों से आती है तो मुख्य न्यायाधीश की शक्तियों के बढ़ने से इस मूल्य में गिरावट भी आ जाती है. यदि न्यायालय की वैधता इस बात में है कि इसके प्रत्येक निर्णय के बारे में स्पष्ट कारण दिए जाते हैं तो मुख्य न्यायाधीश के कुछ कार्यों में अनिश्चितता होने से इसकी पारदर्शिता में कमी भी आ सकती है. इसके अलावा वर्तमान व्यवस्था मुख्य न्यायाधीश के निर्दोष चरित्र पर निर्भर करती है. इस बात की कोई गारंटी नहीं है कि भविष्य में इन शक्तियों का दुरूपयोग नहीं किया जाएगा. संसद द्वारा

महाभियोग लगाने के अलावा इस पर किसी प्रकार की निगरानी की व्यवस्था भी नहीं है और महाभियोग चलाने की प्रक्रिया भी सरल नहीं है. इसी प्रकार की शक्तियाँ उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीशों के पास भी हैं और इस तरह इनके दुरूपयोग की आशंका कई गुना बढ़ जाती है.

पीठ तय करने के लिए अपने पर लगे विचाराधारा संबंधी आरोपों को नकारते हुए मुख्य न्यायाधीश सुब्बाराव ने सिफ़ारिश की थी कि उनकी सेवानिवृत्ति के बाद सभी महत्वपूर्ण संवैधानिक कानून संबंधी मामलों पर समस्त न्यायालय – उस समय न्यायाधीशों की संख्या 11 थी - एक साथ बैठकर निर्णय ले. "समस्त न्यायालय एक साथ होने से लोगों के मन में कोई आशंका न रहेगी कि न्यायालय का निर्णय न्यायसंगत है या नहीं." आज न्यायालय में 31 न्यायाधीशों की संख्या देखते हुए यह सुझाव व्यावहारिक नहीं लगता. परंतु पीठों का चयन यादृच्छिक रूप में तो किया ही जा सकता है. यदि न्यायालय को लगे कि कुछ न्यायाधीशों की कतिपय मामलों में विशेषज्ञता है तो उन्हें सुनवाई के लिए प्राथमिकता के आधार पर चुना जा सकता है. कुछ सिद्धांत भी तय किए जा सकते हैं जिनके आधार पर उनका चयन किया जाए.

इस बीच सहकर्मियों के ज़रिए न्यायाधीशों की नियुक्ति को लेकर खास तौर पर पिछले साल कर्नाटक उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश जिन पर बार के सदस्यों द्वारा भ्रष्टाचार के आरोप लगाए गए थे, के विवादास्पद चयन जैसी घटनाओं को लेकर काफ़ी दबाव बना हुआ है. विधि आयोग ने राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग के गठन की सिफ़ारिश की है,जिसमें व्यापक आधार पर अलग-अलग वर्ग के सरकारी और विधि क्षेत्र के विशेषज्ञों को सहयोजित किया जाए ताकि चयन प्रक्रिया अधिक विश्वसनीय हो सके.

मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति की प्रक्रिया पर भी पुनर्विचार करने की आवश्यकता है कुछ पुराने टिप्पणीकारों ने चेतावनी दी है कि सर्वाधिक योग्य न्यायाधीश के बजाय वरिष्ठतम न्यायाधीश को मुख्य न्यायाधीश के रूप में नियुक्त करने की परंपरा स्वस्थ नहीं है. परंतु मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति के मामले में योग्यता के स्थान पर राजनीति के हावी होने की आशंका के कारण वरीयता को ही एकमात्र योग्यता मान लिया गया है. न्यायाधीशों के चयन के लिए गठित किया जाने वाला नया राष्ट्रीय आयोग उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीशों के चयन के लिए वरीयता जैसे अन्य कारकों को साथ मिलाकर योग्यता के आधार किया जाना चाहिए.

नीति-निर्धारकों को इन सुधारों पर विचार करना चाहिए. यह देखते हुए कि आगे आने वाले भविष्य में मुख्य न्यायाधीश ही उच्च स्तर के न्यायालयों पर हावी रहेंगे, न्यायपालिका का दीर्घकालीन स्वास्थ्य उनके अधिकारियों की पारदर्शी शक्तियों और अधिकारों के दुरुपयोग की न्यूनतम आशंकाओं पर निर्भर करेगा. ऐसी प्रणाली अपनाकर ही न्यायपालिका अनेकानेक चुनौतियों का सामना कर पाएगी और आने वाले वर्षों में और भी बढ़ने वाले कार्यपालकों के दबाव से मुक्त हो पाएगी.

निकोलस रॉबिन्सन नई दिल्ली स्थित नीति अनुसंधान केंद्र में विज़िटिंग फ़ैलो हैं.

हिंदी अनुवादः विजय कुमार मल्होत्रा, पूर्व निदेशक (राजभाषा),रेल मंत्रालय, भारत सरकार

<malhotravk@hotmail.com>